

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 28 — नन्द और वरुण

5 October 2026



एकादशी की रात्रि में लिया गया एक पिता का शान्त व्रत प्रभु को जल की गहराइयों तक खींच लाता है — और जो कथा एक उद्धार से आरम्भ होती है, वह सीधे-सादे गोपों को उस सनातन लोक के दर्शन तक पहुँचा देती है जो समस्त अन्धकार के पार है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस अट्ठाईसवें अध्याय में श्री शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को सुनाते हैं कि किस प्रकार व्रत-पालन के समय जलाधिपति के एक सेवक ने नन्दजी को पकड़ लिया, और किस प्रकार स्वयं श्रीकृष्ण उस जल-राज्य में उतरकर अपने पिता को घर ले आए। किन्तु यह उद्धार आगे चलकर एक दिव्य प्रकाशन बन जाता है, क्योंकि प्रभु ब्रज के ग्वालों को वह दर्शन दे देते हैं जो मुनिजन दीर्घ समाधि के पश्चात् ही पाते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

- अध्याय: 28 (अष्टाविंश अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: श्रीकृष्ण द्वारा नन्द बाबा को वरुणलोक से छुड़ाना
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: ब्रज में कालिन्दी (यमुना) तथा जल के नीचे वरुण का लोक
- केंद्रीय विषय: नन्दजी का एकादशी-व्रत और वरुण के सेवक द्वारा उनका हरण; वरुण द्वारा प्रभु की पूजा और क्षमा-याचना; तथा गोपों को प्रभु के अपने सनातन लोक का दर्शन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 28, श्लोक 1-17
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी संस्करण)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

सत्ताईसवें अध्याय में इन्द्र नतमस्तक होकर गोवर्धन पर आए और सुरभि गौ भी उनके साथ आई; सुरभि ने अपने दूध से तथा इन्द्र ने आकाशगंगा के जल से प्रभु का अभिषेक किया और उन्हें गोविन्द — गौओं के स्वामी — के रूप में प्रतिष्ठित किया। अब कथा पुनः ब्रज के शान्त तटवर्ती जीवन की ओर लौटती है, जहाँ एक वृद्ध गोप ब्राह्म मुहूर्त से पूर्व के अँधेरे में अपना पवित्र व्रत पूरा कर रहे हैं।

एकादशी की रात्रि में एक पिता का व्रत

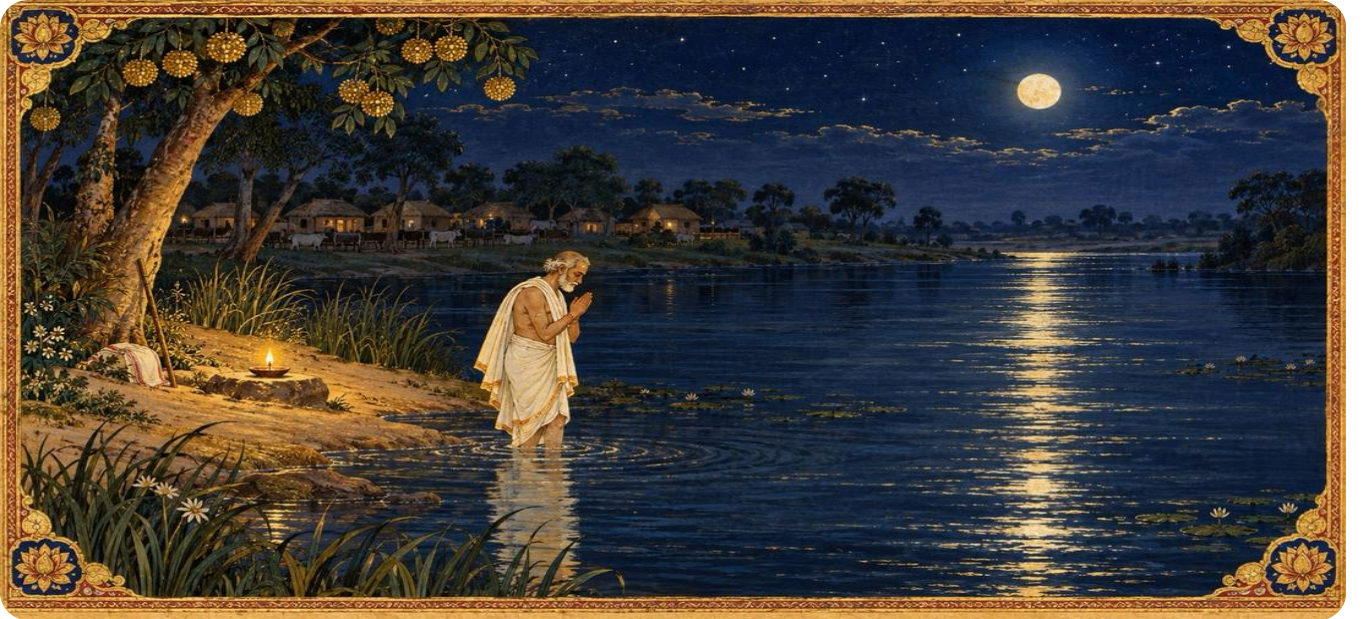
गोपों के स्नेहमय अधिपति नन्दजी ने एकादशी को निराहार रहकर उस तिथि के अधिष्ठाता भगवान् जनार्दन की विधिवत् पूजा की थी। द्वादशी निकट थी, और व्रत की पूर्णता के लिए स्नान उसी तिथि की निर्धारित बेला में होना आवश्यक था। इसलिए उस रात्रि के अन्तिम प्रहर में, जब समूचा ब्रज सो रहा था, नन्दजी कालिन्दी के तट तक गए और उसके श्यामल जल में उतर पड़े।

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।

स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्यां द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥

ekādaśyāṁ nirāhāraḥ samabhyarcya janārdanam snātuṁ nandas tu kālindyāṁ dvādaśyāṁ jalam āviśat

अर्थ: एकादशी को निराहार रहकर भगवान् जनार्दन की विधिपूर्वक अर्चना करने के पश्चात् नन्दजी द्वादशी की बेला में स्नान करने के लिए कालिन्दी के जल में प्रविष्ट हुए। (स्कन्ध 10, अध्याय 28, श्लोक 1)



एकादशी को निराहार रहकर भगवान् जनार्दन की पूजा करने के पश्चात् नन्दजी रात्रि के अन्तिम प्रहर में कालिन्दी में उतरते हैं, जिससे स्नान द्वादशी की बेला में हो सके (श्लोक 1)।

जलाधिपति के लोक में हरण

किन्तु रात्रि की वे घड़ियाँ असुरों के विचरण के लिए नियत हैं, और वरुण का एक असुर सेवक वहीं दृष्टि लगाए था। अनजाने में उस बेला जल में उतरने को अपराध मानकर उसने नन्दजी को पकड़ लिया और जल के नीचे अपने स्वामी के समक्ष ले गया।

तट पर गोपों ने बहुत खोजा, पर वे कहीं न मिले। तब अन्धकार में उनकी एक ही पुकार गूँज उठी — ‘हे राम! हे कृष्ण!’ प्रभु ने वह पुकार सुनी, और यह जान लिया कि उनके पिता वरुण के लोक में ले जाए गए हैं। अपने जनों को अभय देने वाले भगवान् स्वयं उसी द्वार पर जा पहुँचे।



असुरों के लिए नियत बेला में जल में उतरने पर वरुण का एक असुर सेवक नन्दजी को पकड़ लेता है, और खोजते हुए गोप पुकार उठते हैं — ‘हे राम! हे कृष्ण!’

वरुण द्वारा हृषीकेश को पूजा

लोकपाल वरुण ने जब अपने समक्ष हृषीकेश को खड़ा देखा, तो वह दर्शन ही उनके लिए महान् उत्सव बन गया। हर्ष से भरकर उन्होंने विपुल उपचारों से प्रभु की पूजा की और भय से नहीं, कृतज्ञता से दीप्त वचन कहे।

अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥

adya me nibhṛto deho 'dyaivārtho 'dhigataḥ prabho tvat-pāda-bhājo bhagavann avāpuḥ pāram adhvanaḥ

अर्थ: हे स्वामी! आज मेरा शरीर कृतार्थ हुआ और आज ही मेरा प्रयोजन सिद्ध हो गया; हे भगवन्! जो आपके चरणों का आश्रय लेते हैं, वे संसार-मार्ग के उस पार पहुँच जाते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 28, श्लोक 5)

इसके पश्चात् उन्होंने प्रभु को परब्रह्म परमात्मा के रूप में प्रणाम किया — उस परमात्मा को, जिनमें लोक-लोकान्तरों की रचना करने वाली माया का नाम तक सुनाई नहीं देता। फिर वे सीधे प्रसंग पर आए, और ऐसी सरलता से आए कि पढ़ते ही हृदय द्रवित हो जाता है। उन्होंने कहा कि जो पुरुष यहाँ खड़े हैं, उन्हें मेरा ही एक मूढ़ और अज्ञानी सेवक ले आया, जिसे अपने कर्तव्य का बोध नहीं था; इस अपराध के लिए उन्होंने प्रभु से क्षमा माँगी। उन्होंने दोष केवल सेवक पर नहीं डाला, अपितु अपराध को अपने ही सिर पर ले लिया।

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ।
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥

mamāpy anugrahaṁ kṛṣṇa kartum arhasy aśeṣa-dṛk govinda nīyatām eṣa pitā te pitṛ-vatsala

अर्थ: हे कृष्ण! हे सर्वद्रष्टा! मुझ पर भी कृपा करने की कृपा कीजिए; हे गोविन्द! आप माता-पिता पर स्नेह रखने वाले हैं, अतः अपने इन पिता को ले जाइए। (स्कन्ध 10, अध्याय 28, श्लोक 8)

व्रज को लौटना और एक आश्चर्य की कथा

इस प्रकार प्रसन्न किए जाने पर ईश्वरों के भी ईश्वर अपने पिता को साथ लेकर लौट आए, और उस पुनर्मिलन से स्वजनों के हृदय में जो आनन्द उमड़ा, उसकी कल्पना ही की जा सकती है। किन्तु नन्दजी अपने साथ एक और वस्तु लेकर लौटे थे — विस्मय। उन्होंने इन्द्रियों की पहुँच से परे एक ऐसा वैभव देखा था जो उन्होंने कभी नहीं देखा था, और उन्होंने यह भी देखा था कि वह समूचा लोक उन्हीं के बालक के सामने नतमस्तक है। आश्चर्य से भरकर उन्होंने अपने सम्बन्धियों को सारा वृत्तान्त कह सुनाया।



ब्रज लौटकर नन्दजी अपने स्वजनों को उस अलौकिक वैभव का वृत्तान्त सुनाते हैं और बताते हैं कि वह समूचा लोक श्रीकृष्ण के सामने नतमस्तक था।

गोपों की अनकही अभिलाषा

गोपों ने यह सुना और उनके मन उत्सुकता से भर उठे। अब उन्हें निश्चय हो गया कि ये साक्षात् परमेश्वर ही हैं, और उनके भीतर एक मौन आशा जाग उठी: क्या सर्वाधीश्वर हमें भी अपनी वही सूक्ष्म गति प्रदान करेंगे, जो उनका अपना धाम है? यह प्रार्थना उन्होंने मुख से कही ही नहीं। किन्तु सर्वदृष्टा प्रभु ने अपने जनों का अभिप्राय भीतर से ही जान लिया, और करुणावश वे विचार करने लगे कि उनकी यह कामना कैसे पूर्ण हो — और साथ ही उस दशा पर भी, जिसमें प्रत्येक देहधारी जीव बँधा हुआ है।

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।

उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥

jano vai loka etasminn avidyā-kāma-karmabhiḥ uccāvacāsu gatiṣu na veda svām gatiṁ bhraman

अर्थ: इस संसार में जीव अविद्या, कामना और कर्म से प्रेरित होकर ऊँची-नीची योनियों में भटकता रहता है और अपनी वास्तविक गति को नहीं जान पाता। (स्कन्ध 10, अध्याय 28, श्लोक 13)

यहीं इस समूची लीला का मर्म छिपा है। प्रभु जल में केवल एक पिता को लौटाने के लिए नहीं उतरे थे, और न ही उन्होंने ब्रज को किसी जल-महल के वैभव पर मुग्ध रहकर रुक जाने दिया। नन्दजी के उस अनुभव ने गोपों की दृष्टि गोचारण-भूमि से ऊपर अवश्य उठा दी थी — किन्तु दिव्य ऐश्वर्य कितना ही चकाचौंध क्यों न हो, वह भी इसी श्लोक में वर्णित अविद्या, काम और कर्म के चक्र के भीतर का ही एक ऊँचा पद है, उन्हीं ऊँची-नीची गतियों में से एक, जिनमें घूमता हुआ जीव अपना घर कभी नहीं पहचानता। इसलिए प्रभु ने उनके भीतर नया-नया जागा हुआ विस्मय लेकर उसे हर रचित वैभव के पार उस एक गति तक पहुँचा दिया जो कभी नहीं बदलती। और यह दान उन्होंने तपस्या में पगे किसी योगी को नहीं, उन ग्वालों को दिया जिनकी एकमात्र सम्पत्ति उनका प्रेम था।

तमस् से परे का लोक

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४ ॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५ ॥

*iti sañcintya bhagavān mahā-kāruṇiko hariḥ darśayām āsa lokam svaṁ gopānām tamasah
param satyam jñānam anantaṁ yad brahma-jyotiḥ sanātanam yad dhi paśyanti munayo
guṇāpāye samāhitāḥ*

अर्थ: ऐसा विचार कर परम करुणामय भगवान् श्रीहरि ने गोपों को अपना वह धाम दिखाया जो अन्धकार से परे है — जो सत्य, ज्ञान, अनन्त और सनातन ब्रह्मज्योति है, और जिसे मुनिजन तभी देख पाते हैं जब गुण शान्त हो जाते हैं और वे पूर्णतया समाहित हो जाते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 28, श्लोक 14-15)

प्रभु उन्हें ब्रह्महृद तक ले गए, और वहाँ वे उस सर्वग्रासी ब्रह्म में डूबकर तन्मय हो गए, जब तक कि स्वयं भगवान् ने उन्हें समाधि से जगाने की भाँति पुनः ऊपर न उठा लिया। तब उनकी आँखें ऐसे देश पर खुलीं जिसे देखने की आशा किसी ग्वाले ने कभी न की थी — वही धाम, जिसका दर्शन इन्हीं प्रभु की कृपा से अक्रूरजी को भी हुआ था।

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा ॥ १६ ॥

*te tu brahma-hradam nītā magnāḥ kṛṣṇena coddhṛtāḥ dadṛśur brahmaṇo lokam yatrākrūro
'dhyagāt purā*

अर्थ: ब्रह्महृद में पहुँचाए जाकर और वहाँ निमग्न होकर, फिर श्रीकृष्ण द्वारा ऊपर उठाए जाने पर उन्होंने ब्रह्म के उस लोक का दर्शन किया, जिसे अक्रूरजी ने भी देखा था। (स्कन्ध 10, अध्याय 28, श्लोक 16)



सर्वग्रासी ब्रह्म से श्रीकृष्ण द्वारा ऊपर उठाए जाने पर नन्दजी और गोप अन्धकार से परे उस सनातन धाम का दर्शन करते हैं, जहाँ साक्षात् वेद उनका यश गाते हैं (श्लोक 16-17)।

वेदों द्वारा स्तुत श्रीकृष्ण

उस ज्योतिर्मय देश में गोपों ने जो देखा, उसने सब कुछ पूर्ण कर दिया। श्रीकृष्ण वहीं विराजमान थे, और साक्षात् मूर्तिमान वेद उनकी स्तुति गा रहे थे। जो ग्वाले उन्हें नदी-तट पर ढूँढ़ रहे थे, उन्होंने अब उन्हें अनन्तता के मध्य स्तुत होते देखा — और फिर उसी क्षण अपने ही बीच, अपने उसी बालक के रूप में, पहले की ही भाँति पाया।

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिवृताः ।

कृष्णं च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥

nandādayas tu taṁ dṛṣṭvā paramānanda-nivṛtāḥ kṛṣṇaṁ ca tatra cchandobhiḥ stūyamānaṁ su-
vismitāḥ

अर्थ: उस लोक को देखकर और वहाँ वेदों द्वारा स्तुति किए जाते हुए श्रीकृष्ण को देखकर नन्दजी आदि गोप परम आनन्द में निमग्न और अत्यन्त विस्मित हो गए। (स्कन्ध 10, अध्याय 28, श्लोक 17)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. एकान्त में किया गया व्रत कभी अनदेखा नहीं जाता। नन्दजी के उपवास और ब्राह्म-बेला के स्नान (श्लोक 1) को प्रभु के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था — और जब वह अनुष्ठान बाधित हुआ, तो स्वयं प्रभु ही उन्हें लेने पहुँचे। सच्ची निष्ठा अपनी रक्षा स्वयं बन जाती है।
2. दर्शन ही वास्तविक निधि है। समुद्र के समस्त रत्न वरुण के अधिकार में हैं, फिर भी वे कहते हैं कि उनका प्रयोजन आज ही सिद्ध हुआ (श्लोक 5)। लोकपालों में सबसे वैभवशाली अपना सौभाग्य प्रभु के एक दर्शन से नापते हैं।

3. विनम्रता वह दोष भी अपने ऊपर ले लेती है जो उसने किया ही नहीं। वरुण अपने सेवक को त्यागने के बजाय उत्तरदायित्व स्वीकार करते हैं, क्षमा माँगते हैं और नन्दजी को लौटाते हुए प्रभु को पितृवत्सल कहकर पुकारते हैं (श्लोक 8)। भक्त की महत्ता इसी में है कि वह कितनी शीघ्रता से झुक जाता है।

4. जीव अपनी ही गति भूल बैठा है। अविद्या, कामना और कर्म उसे ऊँची-नीची योनियों में घुमाते रहते हैं और अपने यथार्थ स्वरूप का बोध नहीं होने देते (श्लोक 13)। प्रभु की करुणा इसी रोग का उपचार करती है।

5. वे उस प्रार्थना को भी सुन लेते हैं जो कही ही नहीं गई। गोपों ने केवल मन में चाहा; प्रभु ने उनका हृदय पढ़ लिया और वह धाम दिखा दिया जिसे मुनिजन गहन समाधि में ही पाते हैं (श्लोक 14–15)। जो प्रयत्न से नहीं मिलता, वह प्रेम खींच लाता है।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय का आरम्भ कितनी छोटी-सी बात से होता है, यही बात मन को छू जाती है। न कोई युद्ध, न व्रज पर टूटता कोई असुर। एक वृद्ध गोप बस इतना चाहते हैं कि उनका व्रत ठीक विधि से पूरा हो जाए, और इसीलिए वे पौ फटने से पहले ठंडे जल में उतर जाते हैं, क्योंकि शास्त्र उसी बेला स्नान का विधान करते हैं। इसी के लिए — एक बूढ़े भक्त की व्रत-विषयक सावधानी के लिए — समस्त लोकों के स्वामी जल के नीचे उतर आते हैं। हम प्रायः सोचते हैं कि भगवान् बड़े कार्य सँभालते हैं और छोटी बातें हम पर छोड़ देते हैं। यहाँ वही छोटी बात उनके ध्यान का विषय बनती है, और एक भक्त की व्रत-निष्ठा से सारा व्रज निहाल हो जाता है। और देखिए कि उसके बाद व्रज क्या माँगता है: न सुरक्षा, न समृद्धि, न कोई स्पष्टीकरण। जल के अधिपति को अपने बालक के आगे झुकते देखकर वे केवल इतना चाहते हैं कि जहाँ वे हैं, वहीं हम भी रहें। यही मौन चाह इस अध्याय की सबसे फलवती प्रार्थना है, और प्रभु सबसे पहले उसी को पूरा करते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज कोई एक छोटा-सा आध्यात्मिक संकल्प पूरी सावधानी से निभाइए — हरिनाम की निश्चित संख्या, नियत समय पर जलाया गया दीप, या सोने से पहले पढ़ा गया एक श्लोक — और उसे तब भी निभाइए जब किसी को पता न चले कि आपने उसे निभाया। ऐसा करते हुए इस अध्याय का मौन आश्वासन मन में रखिए कि जो केवल प्रभु के लिए किया जाता है, उस पर उनकी दृष्टि अवश्य रहती है। फिर उठने से पूर्व वही अनकही अभिलाषा उनके चरणों में रख दीजिए कि बस उनके निकट स्थान मिल जाए, और धीरे-धीरे जपिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

नन्दजी का एकादशी-व्रत, जो जल के एक सेवक द्वारा भंग हुआ, प्रभु के हाथों में पड़कर सबसे बड़े वरदान का द्वार बन जाता है। वरुण उनकी पूजा करते हैं और हाथ जोड़कर पिता को लौटा देते हैं; व्रज ऐसे वैभव पर विस्मित होता है जिसकी उसने कल्पना भी न की थी; और प्रभु, अपने जनो की अनकही अभिलाषा को पढ़कर, उन्हें हर रचित आश्चर्य के पार उस सनातन धाम तक उठा ले जाते हैं जहाँ वेद उनका यश गाते हैं। यह अध्याय एक ही सत्य हमारे हाथ में रख जाता है: परमेश्वर अपने भक्तों को संकट से केवल निकालते नहीं, उस संकट को ही वे उन्हें अपने घर तक लाने का साधन बना देते हैं। हम भी केवल उन्हीं को चाहना सीखें, और शेष सब उन्हीं पर छोड़ दें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), अष्टाविंश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-28-krishna-rescues-nanda-from-varuna-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट